छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर (छ.ग)

रिट याचिका **227 क्र. 137/2009**

याचिकाकर्ता : प्रवीण कटेला

बनाम

उत्तरवादी : श्रीमति कमला देवी व अन्य,

12/02/2009 को निर्णय और आदेशो की घोषणा के लिए प्रेषित।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

एसडी/-

सतीश के . अग्निहोत्री

न्यायमूर्ति

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर (छ.ग)

रिट याचिका 227 क्र. 137/2009

याचिकाकर्ता : प्रवीण कटेला, आयु लगभग 37 वर्ष पिता श्री
वादी बी.एल कटेला, निवासी व्यवहार लाइन्स, रायपुर
तहसील व जिला: रायपुर (छ.ग.)

बनाम

उत्तरवादी :
प्रतिवादी

1. श्रीमति कमला देवी व अन्य, आयु लगभग 58 वर्ष, पति स्वर्गीय परसमल जैन निवास - शंकर नगर पानी टंकी के समीप, तहसील व जिला: रायपुर (छ.ग.)
2. श्रीमति नीता देवी भंसाली, उम्र लगभग 44 वर्ष, पति श्री राजकुमार भंसाली, निवास - मालवीय रोड , बैजनाथपरा, रायपुर (छ.ग.), तहसील व जिला: रायपुर (छ.ग.)
3. श्रीमति ममता देवी भंसाली उम्र लगभग 40 वर्ष, पति श्री मुकेश चन्द्र भंसाली, निवास - मालवीय रोड , बैजनाथपरा, रायपुर (छ.ग.), तहसील व जिला: रायपुर (छ.ग.)

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(भारत का संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका)

एकल पीठ : माननीय न्यायमूर्ति श्री **सतीश के. अग्निहोत्री**

याचिककर्ता की ओर से : श्री वी. जी तामस्कर।
उत्तरवादी की ओर से : श्री मनोज परांजपे।

निर्णय

(12 फरवरी, 2009 को पारित)

1. याचिकाकर्ता ने इस याचिका के माध्यम से व्यवहार न्यायाधीश वर्ग-I रायपुर के न्यायालय में लंबित व्यवहार वाद क्रमांक 133/06 में पारित आदेश दिनांक 06.12.2008 (अनुलग्नक पी/7) को चुनौती दी है, जिसके तहत व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सीपीसी') के आदेश VI नियम 17 के तहत वाद में संशोधन के लिए दायर याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

2. संक्षेप में, तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 23.10.1992 को घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक वाद दायर किया (अनुलग्नक पी/1)। उत्तरवादियों/प्रतिवादियों द्वारा दिनांक 23.03.1993 को लिखित कथन दाखिल किया गया। व्यवहार वाद शुरू में सी.एस. 246 ए/1992 के रूप में पंजीकृत किया गया था, उसके बाद इसे पुनः क्रमांकित किया गया, सी.एस. 133 ए/2006। इसके बाद उत्तरवादियों/प्रतिवादियों ने लगभग 16 वर्ष बाद दिनांक 10.09.2008 को व्य.प्र.सं के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत एक आवेदन (अनुलग्नक पी/3) प्रस्तुत किया, जिसमें लिखित कथन में संशोधन की मांग की गई। याचिकाकर्ता की आपत्ति के बावजूद, दिनांक 17.11.2008 के आदेश (अनुलग्नक पी/4) द्वारा आवेदन स्वीकार कर लिया गया।

3. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 03.12.2008 को सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत वादपत्र में परिणामी संशोधन के लिए एक आवेदन भी दायर किया (अनुलग्नक पी/5)। उक्त संशोधन को विद्वान न्यायाधीश ने दिनांक 06.12.2008 को अस्वीकार कर दिया। अतः, यह याचिका प्रस्तुत की गयी है।

4. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री वी.जी. तामस्कर ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता वादपत्र में परिणामी संशोधन का हकदार है। अतः विद्वान न्यायाधीश को वादपत्र में संशोधन की अनुमति देनी चाहिए थी।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. इसके विपरीत उत्तरवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज परांजपे ने व्यवहार न्यायाधीश वर्ग-I द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता का आवेदन खारिज कर दिया गया था।

6. मैंने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है, तर्कों और उनके साथ संलग्न दस्तावेजों का अवलोकन किया है।अभिवचनों के साथ संलग्न दस्तावेजों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है कि प्रस्तावित संशोधन वादपत्र की प्रकृति को बदलता है या मूल मामले के न्यायनिर्णयन को सुगम बनाता है। विद्वान न्यायाधीश ने इस साधारण आधार पर आवेदन को अस्वीकार कर दिया है कि लिखित कथन में संशोधन के परिणामस्वरूप परिणामीक संशोधन की अनुमति नहीं है।

7. विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी भी स्तर पर संशोधन की अनुमति दी जा सकती है, यदि न्यायालय को यह विश्वास हो कि समुचित तत्परता के बावजूद पक्षकार सुनवाई शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था और प्रस्तावित संशोधन से वाद की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

8. वाद में वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए आवश्यक सभी संशोधनों को स्वीकार किया जाना चाहिए, इस शर्त पर कि प्रस्तावित संशोधन उस नए वाद-कारण को परिवर्तित या प्रतिस्थापित न करे जिसके आधार पर मूल वाद या बचाव प्रस्तुत किया गया था या बचाव पक्ष प्रस्तुत किया गया था। मूल आवश्यकता यह है कि संशोधन तभी स्वीकार्य है जब पक्षकारों के बीच विवाद के वास्तविक प्रश्न के निर्धारण के लिए यह आवश्यक हो।

9. व्य.प्र.सं. के आदेश VI नियम 17 के तहत दलीलों में संशोधन की अवधारणा पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों में विशद चर्चा की गई है।

10. *बी.के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई एवं अन्य*[1] के मामले में सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के मामले के समय निम्नलिखित विचार व्यक्त कराई:

> "तथ्यों की स्वीकृत स्थिति के विपरीत असंगत और विरोधाभासी आरोपों या तथ्यों के परस्पर विरोधी आरोपों को याचिका में संशोधन के माध्यम से शामिल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रस्तावित संशोधन से दूसरे पक्ष को ऐसा कोई नुकसान नहीं होना चाहिए जिसकी भरपाई व्यय से न की जा सके। ऐसा कोई संशोधन नहीं किया जाना चाहिए जो समय बीत जाने के कारण विरोधी पक्ष को प्राप्त होने वाले किसी विधिक अधिकार को पराजित करने के बराबर हो या उससे संबंधित हो। याचिका में संशोधन के लिए याचिका दायर करने में हुए विलंब की भरपाई व्यय ले उचित रूप से की जानी चाहिए, जो यदि कपटपूर्ण न हो, तो उसे वादपत्र या लिखित कथन में संशोधन के आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11. इसके अलावा, *सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन, टी.एन. बनाम भारत संघ*[2] के मामले में, उपरोक्त सिद्धान्त को निम्नानुसार दोहराया गया था:

> "26. संहिता का आदेश 6 नियम 17 अभिवचनों में संशोधन से संबंधित है। 1999 के संशोधन अधिनियम 46 द्वारा इस प्रावधान को विलोपित कर दिया गया था। 2002 के संशोधन अधिनियम 22 द्वारा इसे पुनः स्थापित कर दिया गया है, लेकिन एक अतिरिक्त प्रावधान के साथ, ताकि वाद शुरू होने के बाद संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति न दी जाए, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर न पहुँचे कि समुचित तत्परता के बावजूद, पक्षकार वाद शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकता था। यह प्रावधान, कुछ हद तक, किसी भी स्तर पर संशोधन की अनुमति देने के पूर्ण विवेकाधिकार को सीमित करता है। अब, यदि आवेदन वाद शुरू होने के बाद दायर किया जाता है, तो यह दर्शाना होगा कि उचित जाँच-पड़ताल के बावजूद, ऐसा संशोधन पहले नहीं मांगा जा सकता था। इसका उद्देश्य वाद में देरी करने के लिए दायर किए जाने वाले तुच्छ आवेदनों को रोकना है। इस प्रावधान में कोई अवैधानिकता नहीं है।"

---

[1] 2000 (1) एससीसी 712

[2] (2005) 6 एससीसी 344

12. इसके अलावा, राज कुमार बनाम दीपेंद्र कौर सेठी[3] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, पीरगोंडा होंगोंडा पाटिल बनाम कलगोंडा शिदगोंडा पाटिल (एआईआर 1957 एससी 363) में निर्धारित सिद्धांत का अवलंब लेते हुए, कण्डिका 8 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "संशोधनों को केवल तभी अस्वीकार किया जाना चाहिए जब दूसरे पक्ष को उसी स्थिति में नहीं रखा जा सकता है जैसे कि यदि अभिवचन मूल रूप से सही थी, लेकिन संशोधन से उसे ऐसी क्षति होगी जिसकी व्ययोंसे भरपाई नहीं की जा सकती। यह इस सामान्य नियम का केवल एक विशेष मामला है कि जहां एक वादी वाद कारण के संबंध में एक नया दावा स्थापित करके संशोधन करना चाहता है, जो कि वाद संस्थित किए जाने के बाद से परिसीमा द्वारा वर्जित हो गया है, संशोधन को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए; इसे अनुमति देने से प्रतिवादी को ऐसी क्षति होगी जिसकी लागतों से व्ययों नहीं की जा सकती क्योंकि उसे दावे के लिए एक अच्छे बचाव से वंचित किया जाएगा।"

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ए.पी. राज्य एवं अन्य बनाम पायनियर बिल्डर्स, ए.पी.4[4] के मामले में याचिका अभिवचनों में संशोधन को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को निर्धारित किया है जो इस प्रकार है:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> "21.....फिर भी, एक विशिष्ट वाद-कारण को दूसरे से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता और न ही संशोधन के माध्यम से वाद की विषय-वस्तु को बदला जा सकता है। मा श्वे म्या बनाम माउंग मो ह्लांग में प्रिवी काउंसिल के निर्णय से निम्नलिखित अंश उस सिद्धांत को संक्षेप में प्रस्तुत करता है जिसे अभिवचनों में संशोधन के लिए प्रार्थना पर विचार करते समय ध्यान में रखा जा सकता है:"
>
> > न्यायालय के सभी नियम न्याय के समुचित प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए प्रावधानों के अलावा और कुछ नहीं हैं, और इसलिए यह आवश्यक है कि उन्हें उस उद्देश्य के अधीन बनाया जाए, ताकि संशोधन की पूरी शक्तियों का उपयोग किया जा सके और उनका हमेशा उदारतापूर्वक प्रयोग किया जा सके, लेकिन फिर भी अभी तक कोई शक्ति नहीं दी गई है जिससे एक विशिष्ट वाद हेतु को दूसरे के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सके, या संशोधन के माध्यम से वाद की विषय-वस्तु को बदला जा सके..."

14. *बोलेपांडा पी. पूनाचा एवं अन्य बनाम के.एम. मडप्पा*[5] के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लिखित कथन में संशोधन के लिए प्रतिवादियों द्वारा दायर आवेदन पर विचार करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की:

---

[3] (2005) 9 एससीसी 304

[4] (2006) 12 एससीसी 119

[5] 2008 एआईआर एससीडबल्यू 2895

> "13. ऐसे मामलों में न्यायालय के पास व्यापक विवेकाधिकार होता है। हालाँकि, उसे न्याय के अंतिम कारण की पूर्ति करनी चाहिए। यह सत्य हो सकता है कि आगे मुकदमेबाजी से बचने का प्रयास किया जाना चाहिए। यह भी सत्य हो सकता है कि किसी वाद में कई वाद-कारणों का संयोजन अनुमेय हो।हालाँकि, न्यायालय को विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना चाहिए। न्याय की अनुपालना को अंतिम लक्ष्य मानते हुए, वैधानिक सीमा का अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। राहत प्रदान करना प्रत्येक मामले से संबंधित तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करेगा। न्यायालय निस्संदेह गंभीर अन्याय या अपूरणीय क्षति के प्रश्नों पर विचार करेगा, फिर भी उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि सभी परिस्थितियों में अभिवचनों में संशोधन का प्रावधान अधिकार के रूप में उपलब्ध नहीं होता है। एक वाद कारण को दूसरे द्वारा प्रतिस्थापित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। सामान्यतः, पूर्व अभिवचनों में की गई स्वीकृति के प्रभाव को समाप्त करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।"

15. इसके अलावा, विद्याबाई और अन्य बनाम पद्मलता और अन्य[6] में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार विचार व्यक्त किया:

> "14. यह तय करना न्यायालय का प्राथमिक कर्तव्य है कि क्या पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद का निपटारा करने के लिए ऐसा संशोधन आवश्यक है। केवल तभी संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए जब ऐसी शर्त पूरी हो।हालाँकि, संहिता के आदेश VI नियम 17 में संलग्न प्रावधान न्यायालय की शक्ति को सीमित करता है। यह उसके क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाता है। इस प्रकार के मामले में न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है। इस प्रकार, जब तक कि इसमें परिकल्पित क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य विद्यमान न पाया जाए, न्यायालय को वादपत्र में संशोधन की अनुमति देने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा।"

16. जहां तक व्य.प्र.सं. के आदेश VI नियम 17 के तहत अभिवचनों में संशोधन का प्रश्न है, "सम्यक तत्परता" शब्द का प्रयोग लगातार किया जाता रहा है, लेकिन इसे स्पष्ट किए जाने तथा न्याय के उद्देश्य को बनाए रखने के लिए व्याख्या किए जाने की आवश्यकता है।

17. चंद्रकांत बंसल बनाम राजिंदर सिंह आनंद[7] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने "सम्यक तत्परता" शब्द को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है:

> 16. संहिता में "सम्यक तत्परता" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी (संस्करण 2006) के अनुसार, "सम्यक तत्परता"शब्द का अर्थ है सावधानीपूर्वक और निरंतर प्रयास या प्रयास। "तत्परता" का अर्थ है अपने

[6] 2009 (1) सूप्रीम 238

[7] (2008) 5 एससीसी 117

WebCopy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

कार्य और कर्तव्यों के प्रति सावधानीपूर्वक और निरंतर प्रयास, जिसमें सावधानी और प्रयास प्रदर्शित होता है। ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (18 वां संस्करण) के अनुसार, "तत्परता" का अर्थ है किसी कार्य को पूरा करने के लिए निरंतर प्रयास, सावधानी; सतर्कता; किसी विशेष परिस्थिति में किसी व्यक्ति से अपेक्षित ध्यान और देखभाल। "सम्यक तत्परता" का अर्थ है वह परिश्रम जो किसी व्यक्ति से उचित रूप से अपेक्षित है और सामान्यतः उसके द्वारा किसी कानूनी आवश्यकता को पूरा करने या किसी दायित्व का निर्वहन करने के लिए किया जाता है। ड्रेन-डिस्पनिया (स्थायी संस्करण 13-ए) के शब्दों और वाक्यांशों के अनुसार, कानून में "उचित परिश्रम" का अर्थ है हर संभव कार्य करना नहीं, बल्कि हर संभव कार्य करना। "सम्यक तत्परता" का अर्थ है सम्यक तत्परता; इसका अर्थ है ऐसा तत्परता जैसा एक विवेकशील व्यक्ति अपने कार्यों के संचालन में करेगा।"

18. इस न्यायालय ने *श्रीमती आशारानी गुप्ता एवं अन्य बनाम सिद्धार्थ शुक्ला डब्ल्यू.पी. (सी) संख्या 7071/2006* के मामले में, और *श्रीमती राजकुमारी गुप्ता एवं अन्य बनाम भीमसेन गुप्ता एवं अन्य (डब्ल्यू.पी. (सी) संख्या 5210/07)* में व्य.प्र.सं. के आदेश VI नियम 17 के प्रावधानों से संबंधित और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धान्त पर भरोसा करते हुए यह अवधारित किया कि पक्षकारो के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के उद्देश्य से संशोधन की अनुमति है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

19. अभिवचनों में संशोधन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के उपरोक्त सुस्थापित सिद्धांतों को लागू करते हुए, वास्तविक मुद्दा यह है कि क्या प्रस्तावित संशोधन वाद कारण को प्रतिस्थापित करता है या वाद की प्रकृति को बदलता है या सम्यक तत्परता के बावजूद ऐसा संशोधन पहले नहीं किया जा सकता था या वादी वाद हेतुक के संबंध में एक नया मामला स्थापित करके संशोधन करना चाहता है, जिस पर वाद की स्थापना परिसीमा द्वारा वर्जित हो गई थी, इस पर विचारण न्यायालय ने विचार नहीं किया है। परिणामीक संसोधन के लिए याचिकाकर्ता/वादी का आवेदन वादपत्र में संशोधन बिना कोई कारण बताए अस्वीकार कर दिया गया। अतः, व्यवहार वाद क्रमांक 133/06 में पारित दिनांक 06.12.2008 (अनुलग्नक पी/7) का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है और याचिका स्वीकार की जाती है। प्रकरण को व्यवहार न्यायाधीश, वर्ग-I, रायपुर को पुनः विचार करने तथा उपरोक्त विभिन्न निर्णयों के आलोक में याचिकाकर्ता के आवेदन पर युक्तिसंगत आदेश पारित करने हेतु प्रतिप्रेषित किया जाता है। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

20. रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि इस निर्णय की एक प्रति सभी जिला न्यायाधीशों को सूचनार्थ वितरित की जाए जो अन्य सभी न्यायाधीशों को भी वितरित करेंगे।

एसडी/-

सतीश के . अग्निहोत्री

न्यायमूर्ति

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated by:- Gajendra Prakash Sahu

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur